# ज़िन्दगी, मौत और इन्सान

## ( क़ुरआन की रोशनी में )

लेखक- डॉ0 इसरार अहमद
अनुवाद- डॉ0 रफ़ीक़ अहमद

## *ज़िन्दगी की हक़ीक़त*

ज़िन्दगी महज़ बक़ौल इक़बाल ''ज़िन्दगी क्या है, अनासिर में ज़हूरे तर्तीब-मौत क्या है, इन्हीं अज्ज़ा का परेशां होना'' ही का नाम है या इस ''पर्दये ज़िन्गारी'' में कोई बड़ी हक़ीक़त ''माशूक'' बनी छुपी बैठी है ? इसी तरह मौत ज़िन्दगी के खात्मे का नाम है या यह बजाये ख़ुद ज़िन्दगी ही का एक ''वक्फ़ा'' (अन्तराल) है! यानी ''मौत इक ज़िन्दगी का वक्फ़ा है यानी आगे बढ़ेंगे दम लेकर'' ।

हम अपनी ज़िन्दगी को आज और कल के पैमानों से नापें और अफसोस और हसरत से पुकार उठें कि -

''उम्रे दराज़ मांग के लाये थे चार दिन
दो आरज़ू में कट गये दो इन्तिज़ार में''

या इसे ''जावेदां, पैहमदवां, हरदम जवां'' मानें और अपनी हमेशगी की ज़िन्दगी के तसव्वुर से खुश हो लें यानी -

''तू इसे पैमानये इमरोज़ व फ़र्दा से न नाप
जाविदां, पैहमदवां, हमदमजवां है ज़िन्दगी''

इस मसले के हल का सारा दारोमदार इस पर है कि हम महज़ इस दुनिया तक ही सीमित रहने का फ़ैसला करते हैं और सिर्फ़ ''हवास ख़म्सा'' (पंचेंद्रियों) की सीमित

जानकारी पर ही मुत्मइन हो जाते हैं या अक़्ल व विजदान (बुद्धि एवं विवेक) की क़ूव्वतों को भी काम में लाते हैं और अपने मन में डूबकर ''सुरागे ज़िन्दगी'' को पाने की कोशिश करते हैं ।

आलमे महसूसात (दुनिया) और हवासे ख़म्सा (Five Senses) तक ही सीमित रहिये तो ज़िन्दगी मात्र जन्म से मृत्यु तक के अन्तराल का नाम है। क़ुरआन मजीद उन लोगों के जीवन धारणा को इन शब्दों में व्यक्त किया है : اِنۡ هِیَ اِلَّا حَیَا تُنَا الدُّنۡیَا وَمَا نَحۡنُ بِمَبۡعُوۡثِیۡنَ (الانعام)

''हमारे लिये ज़िन्दगी नहीं मगर यही दुनिया की, और हम को फिर नहीं ज़िन्दा होना । और مَاهِیَ اِلَّا حَیَا تُنَا الدُّنۡیَا

نَمُوۡتُ وَنَحۡیٰی وَمَا یُهۡلِکُنَاۤ اِلَّا الدَّهۡرُ (الجاثیه)

''और कुछ नहीं बस यही हमारा जीना है दुनिया का। हम मरते हैं और जीते हैं और नहीं हलाक (विनष्ट) होते मगर सिर्फ गर्दिशे ज़माना से। और उनके ज़ेहन की पस्ती और इल्म की कोताही पर इन शब्दों में टिप्पणी की है –

یَعۡلَمُوۡنَ ظَاهِرًا مِّنَ الۡحَیٰوةِ الدُّنۡیَا۔(الروم)

''यह लोग सिर्फ़ दुनिया की ज़िन्दगी के ज़ाहिरी हालत को जानते हैं'' और ذٰلِکَ مَبۡلَغُهُمۡ مِّنَ الۡعِلۡمِ۔ (النجم) बस यहीं तक पहुँच है उनके इल्म (ज्ञान) की ।

क्या हक़ीक़त में ज़िन्दगी बस इसी मामूली वक़्फ़े और अन्तराल का नाम है? हमारे हवासेख़म्सा यक़ीनन

पैदाइश के पहले और मौत के बाद के बारे में बिल्कुल मजबूर और विवश हैं, लेकिन क्या इन्सान की अक़्ल इसे स्वीकार करती है ? और दिल इसे क़ुबूल करता है ? ज़रा आंखें बन्द कर के इस विशाल कायनात की महानता और व्यापकता का तसव्वुर करो। फिर सोचो कि इस कायनात का अस्ल वुजूद इन्सान है कायनात की तखलीक़ का आखरी दर्जा ! जीवन प्रगति की आख़री मंज़िल तो क्या इसकी हक़ीक़त मात्र यही है कि बचपन के ''खेल-कूद'' और बुढ़ापे के لِكَيْلَا يَعْلَمَ مِنْ ۢ بَعْدِ عِلْمٍ شَيْئًا (और तुम में से कुछ लौटाये जाते है निकम्मी उम्र को ताकि न जानें जानने के बाद कोई चीज़) के दरम्यान एक थोड़े से अन्तराल के होश व शुऊर का नाम इन्सानी ज़िन्दगी है मानो कि ''इक ज़रा होश में आने के खतावार हैं हम''

जो कोई इन्सानी ज़िन्दगी के इस तसव्वुर और धारणा पर सन्तुष्ट हो सकता हो, आखिर इस धरती पर इन्सान ही तो नहीं बसते लाखों की संख्या में दूसरी मख़लूक़ (प्राणियां) भी यहीं बस रही हैं, तो कौन सी हैरत की बात है कि ख़ुद इन्सानों का एक बड़ा गिरोह इन्सान जैसे जानवरों ही का हो !

لَهُمْ قُلُوبٌ لَّا يَفْقَهُوْنَ بِهَا وَلَهُمْ اَعْيُنٌ لَا يُبْصِرُوْنَ بِهَا وَلَهُمْ اٰذَانٌ لَّا يَسْمَعُوْنَ بِهَا اُولٰٓئِكَ كَالْاَنْعَامِ بَلْ هُمْ اَضَلُّ (سورۃ الاعراف)

''वह दिल रखते हैं लेकिन ग़ौर नहीं करते, आंखें रखते है पर देखते नहीं, कान रखते हैं पर सुनते नहीं वह जानवरों की तरह है बल्कि उनसे भी बदतर''।

अपनी हक़ीक़त से बेख़बर और अपनी (महानता) से बेपरवाह होकर यह इन्सान रूपी जानवर हक़ीक़त में ''इक ज़रा होश में आने के'' भी बस धोखे ही में पड़े हैं । क़ुरआन तो उन्हें ज़िन्दा ही नहीं मानता।

فَإِنَّكَ لَا تُسْمِعُ الْمَوْتٰى وَلَا تُسْمِعُ الصُّمَّ الدُّعَآءَ (سورالروم)

''क्यों कि तुम मुर्दों को नहीं सुना सकते और न ही बहरों को अपनी पुकार सुना सकते हो''

जिनका हाल यह हो कि ''रूह से था ज़िन्दगी में भी तही जिनका जसद'' वह कैसे इन्सानी ज़िन्दगी की बारीक हक़ीक़तों को समझ सकते हैं । क़फसे हवास (इन्द्रजाल) के इन क़ैदियों को कौन समझा सकता है कि–

ऐसे कुछ तार भी हैं साज़े हक़ीक़त में निहां
छू सकेगा जिन्हें जख़्मये मिज़राबे हवास

हाँ जिनका ज़ेह्न इस चार दिन की ज़िन्दगी (उम्रेदराज़ मांग के लाये थे चार दिन– दो आरज़ू में कट गये दो इन्तिज़ार में) पर मुत्मइन न होता हो, जिनके मिट्टी के इस शरीर में हक़ीक़ी ज़िन्दगी करवटें ले रही हो और जिन्हें ख़ुद अपने अन्दर ही की कोई चीज़ अपनी अज़मत

और महानता की और इशारे करती महसूस हो उनकी अन्तरात्मा पर जब ''नुज़ूले किताब'' होता है तो हक़ीक़ी ज़िन्दगी की ''गिरह'' खुलती है बक़ौल इक़बाल–

तेरे ज़मीर पर जब तक न हो नुज़ूले किताब
गिरह कुशा है न राज़ी न साहिबे कश्शाफ़

और वह्य (प्रकाशना) के बादल से हक़ीक़तों की बारिश होती है तो उनकी अक्ल व विज़दान की प्यासी धरती को ऐसा महसूस होता है जैसे उसे ठीक वही चीज़ मिल गयी जिसकी उसे प्यास थी और तब वह इन्सानी ज़िन्दगी जो हवासेखम्सा (पचेंद्रियों) की ''बन्दगी'' में घुट कर नज़र आती थी। इन्सानी ज़ेह्न के उनके चन्गुल से ''आज़ाद'' होते ही एक ''बहरे बेकरां'' (वह समुद्र जिसका किनारा न हो) की सूरत इख़्तियार कर लेती है'' बकौल इक़बाल–

''बन्दगी में घुटकर रह जाती है इक जूये कमआब
और आज़ादी में बह्रे बेकरां है ज़िन्दगी''

और यह इन्सानी ज़िन्दगी जो जिहालत और बेख़बरी में ''अस्ल ज़िन्दगी'' क़रार पा गयी थी, सिकुड़ और सिमट कर अस्ल किताबे ज़िन्दगी के मात्र एक दीबाचे और मुक़दमे (प्रस्तावना) की शक़्ल इख़्तियार कर लेती है। ख़ुदा का यह ऐलान है ।

وَاِنَّ الدَّارَالْاٰخِرَةَ لَهِیَ الْحَیَوَانُ۔ (سورۃالعنکبوت)

''अस्ल ज़िन्दगी तो आख़िरत कि ज़िन्दगी है''

और इन्सानों के इस विशाल जनसमूह पर नज़र डालते हुये जो दुनियावी ज़िन्दगी के खेल-कूद ही को अस्ल ज़िन्दगी समझ बैठा है, हसरत व अफसोस के साथ पुकारता है لَوْ كَانُوْا يَعْلَمُوْنَ ''काश कि यह जानते'' और कभी डांटा जाता है।

كَلَّا بَلْ تُحِبُّوْنَ الْعَاجِلَةَ وَتَذَرُوْنَ الْاٰخِرَةَ (سورۃ القیامہ)

''कुछ नहीं बस तुम दुनिया से मुहब्बत करते हो और आख़िरत (परलोक) भूल जाते हो''

और कभी शिकायत के अन्दाज़ में कहा जाता है

بَلْ تُؤْثِرُوْنَ الْحَيٰوةَ الدُّنْيَا وَالْاٰخِرَةُ خَيْرٌ وَّ اَبْقٰى۔ (سورۃ الاعلیٰ)

''तुम दुनिया कि ज़िन्दगी को तर्जीह (प्राथमिकता) देते हो हालांकि आख़िरत बेहतर भी है और बाक़ी रहने वाली भी ।

अल्लाह-अल्लाह ! क्या इन्क़िलाब है, कहां यह विचारों कि तंगी कि ज़िन्दगी बस यही ज़िन्दगी है और कहां यह व्यापक सोच कि इन्सानी ज़िन्दगी अबदी और सरमदी (स्थाई) है जिसकी कोई सीमा नहीं कहां यह मायूसकुन तसव्वुर कि मौत सिलसिलये-ज़िन्दगी का ख़ात्मा है और कहां इस हक़ीक़त का इल्म कि मौत तो ज़िन्दगी के शहर का अस्ल दरवाज़ा है ।

बदक़िसमती से आख़िरत की ज़िन्दगी को मानने

वालो में भी बहुत कम बल्कि कुछ ही ऐसे हैं जो उसके जाननें वाले हों। उसका मानना जितना आसान है, जानना उतना ही कठिन है। मानना, तो महज़ विरासत से भी मिल जाता है लेकिन जानने के लिए अपने दिल व दिमाग़ को गंभीर और व्यापक करने कि ज़रूरत है। और उसका मौक़ा आज कि भौतिकवादी दुनिया में किसे नसीब है ।

मानने वालों की एक बड़ी तादाद ने दुनिया की ज़िन्दगी को अस्ल किताब जानकर आख़िरत की ज़िन्दगी को बस इसके तितिम्मे और ज़मीमे (परिशिष्ट) की हैसीयत से माना है। हांलाकि जानना यह चाहिये कि अस्ल किताबे ज़िन्दगी तो मौत के बाद खुलने वाली है । यह दुनिया की ज़िन्दगी तो बस उसकी एक भूमिका है। वह हक़ीक़त है और यह सिर्फ उसका एक अक्स (प्रतिबिम्ब) है । वह स्थायी जीवन है और यह अस्थाई । वह हक़ीक़ी और वास्तविक जीवन है और उसके मुक़ाबले में यह मात्र खेल-तमाशा बल्कि मताये ग़ुरूर (धोखे का सामान) है । स्पष्ट आयत है।

وَمَا الْحَيٰوةُ الدُّنْيَا فِى الْاٰخِرَةِ اِلَّا مَتَاعٌ ۔ (سورۃ الرّعد)

''और दुनिया की ज़िन्दगी कुछ नहीं आख़िरत के आगे मगर बहुत ही हक़ीर (तुच्छ)''

فَمَا مَتَاعُ الْحَيٰوةِ الدُّنْيَا فِى الْاٰخِرَةِ اِلَّا قَلِيْلٌ۔ (سورۃ التوبہ)

''सो कुछ नहीं फायदा उठाना दुनिया की ज़िन्दगी का आख़िरत के मुकाबले में मगर बहुत थोड़ा ''

وَمَا هٰذِهِ الْحَيٰوةُ الدُّنْيَا اِلَّا لَهْوٌ وَّ لَعِبٌ۔ (سورۃ العنکبوت)

''और यह दुनिया का जीना तो बस बहलाना और खेलना है''

وَمَا الْحَيٰوةُ الدُّنْيَا اِلَّا مَتَاعُ الْغُرُوْرِ (سورۃ الحدید و آلِ عمران)

और दुनिया की ज़िन्दगी तो सिर्फ धोखे का सामान है''

इसी हक़ीक़त पर गवाह है।

लेकिन दुनिया की ज़िन्दगी की यह सारी हिकारत और तुच्छता। आख़िरत की ज़िन्दगी के मुक़ाबले ही में है। वरना यह बजाये खुद एक ठोस हक़ीक़त है । ज़रा ग़ौर करो जो किताबे हकीम ''मौत'' को भी एक मुस्बत (Positive) हक़ीक़त क़रार दे जो ज़िन्दगी ही की तरह तख़लीक़ (उत्पत्ति) के मर्हले से गुज़री है ।

(बनाया मौत और ज़िन्दगी ताकि तुम को जांचे कौन तुम में अच्छा काम करता है) वह दुनयवी ज़िन्दगी को कब बेहक़ीक़त ठहरा सकती है। यह बेहक़ीक़त सिर्फ़ उस वक़्त बनती है जब उसकी तुलना आख़िरत की ज़िन्दगी से किया जाये, और मताये ग़ुरूर (धोखे का सामान) उस वक़्त करार पाती है जब निगाहें उस पर इस प्रकार केन्द्रित हो जायें कि दिल व दिमाग़ आख़िरत की ज़िन्दगी से औझल हो जायें । यही रहस्य है क़ुरआने हकीम के

इस तबसिरे में कि يَعلَمُونَ ظَاهِرًامِّنَ الْحَيٰوةِ الدُّنيَا ये दुनियवी ज़िन्दगी के मोमिन, ख़ुद दुनिया की ज़िन्दगी की हक़ीक़त से कब वाकिफ़ हैं। इसका भी ''बस ज़ाहिर'' ही उनकी निगाहों के सामने है ख़ुद इसकी हक़ीक़त स्पष्ट हो जाये तो इन्सानी ज़िन्दगी की वह सारी हक़ीक़तों तक पहुंचने के रास्ते भी स्पष्ट हो जायेगें ।

क़ुरआन हकीम ने दुनिया की ज़िन्दगी को इन्सानी ज़िन्दगी का एक इम्तिहानी वक़्फ़ा (परीक्षाकाल) क़रार दिया है- خَلَقَ الْمَوْتَ وَالْحَيٰوةَ لِيَبْلُوَكُمْ اَيُّكُمْ اَحْسَنُ عَمَلًا (سورۃ الملک)

''बनाया मौत और ज़िन्दगी ताकि तुम को जाँचे कौन तुम में अच्छा अमल करता है'' यानी यह इम्तिहानगाह (परीक्षा–स्थल) है नतीजे आख़िरत के बरामद होंगे ।

क़ुल्ज़मे हस्ती से तू उभरा है मानिन्दे हबाब
इस ज़िया खाने में तेरा इम्तेहां है ज़िन्दगी।।
यह घड़ी महशर की है तू अरसये महशर में है
पेशकर ग़ाफ़िल अमल कोई अगर दफ्तर में है।।

और नबी अक़रम सल्ल० ने दुनिया को आख़िरत की खेती क़रार दिया है "اَلدُّنيَا مَزرَعَةُ الْاٰخِرَةِ" गर्ज़ यह कि आख़िरत से मिलाकर देखो तो दुनिया की ज़िन्दगी भी एक ठोस हक़ीक़त है, वरना इसका कोई वास्तविक वजूद ही नहीं रह जाता ।

आख़िरत से हटकर दुनिया की ज़िन्दगी की

हक़ीक़त इसके सिवा और क्या है कि –

اِعْلَمُوْٓا اَنَّمَا الْحَيٰوةُ الدُّنْيَا لَعِبٌ وَّلَهْوٌ وَّ زِيْنَةٌ وَّ تَفَاخُرٌۢ بَيْنَكُمْ وَ تَكَاثُرٌ فِى الْاَمْوَالِ وَ الْاَوْلَادِ ۔ (سورۃالحدید)

''और जान रखो कि दुनिया की ज़िन्दगी तो बस एक खेल और तमाशा है और एक साज-सज्जा और आपस में एक दूसरे पर बड़ाई जताना माल और औलाद की''

लेकिन बचपन में खेल-कूद, नौजवानी की साज-सज्जा, बनाव-सिंगार, जवानी के ग़ुरुर व घमण्ड और मालो दौलत की लालसा के ऐसे दौर से गुज़रते हुये ''इक ज़रा होश में आने'' से दुनिया की ज़िन्दगी एक महान हक़ीक़त और एक अज़ीम नेमत की शक्ल में सामने आती है। और अगर यह हो जाये तो बस यही ज़िन्दगी का निचोड़ है। अगर्चे एक दर्दनाक हक़ीक़त है कि ''होश'' किसी-किसी को नसीब होता है وَمَا يُلَقّٰهَآ اِلَّا ذُوْ حَظٍّ عَظِيْمٍ۔ होश में आकर अगर हक़ीक़त की कोई झलक देख पाओ और फिर उसी के हसीन चेहरे के पुजारी और उसी के ज़ुल्फों (लटों) के बन्दे और ग़ुलाम हो जाओ तो बस यही ज़िन्दगी की पूंजी है, फिर जब तक यहां रहोगे चैन और सुकून से रहोगे और ''اَحَقُّ بِالْاَمْنِ'' क़रार पाओगे, मौत दुल्हन के कमरे में दाखिल होने से ज़्यादा खुश आइन्द नज़र आयेगी तुम्हारे लिये और उसका स्वागत मुस्कुराते हुये करोगे ।

निशाने मर्दे मोमिन बा तू गोयम
चूँ मर्गे आइद तबस्सुम बरलबे ओस्त

(तुम्हे बताऊँ कि मर्द मोमिन की निशानी क्या है ? जब मौत का वक़्त आता है तो उसके होंठों पर मुस्कुराहट होती है) और वहां उठोगे तो इस हाल में कि –

نُوْرُهُمْ يَسْعٰى بَيْنَ اَيْدِيْهِمْ وَبِاَيْمَانِهِمْ- (سورۃ الحدید وسورۃ التحریم)

उनकी रोशनी दौड़ती होगी उनके आगे और उनके दाहिने, और फिर हमेशा–हमेश के लिये अम्न व सुकून ही में नहीं बल्कि तुम्हारे दीदारे इलाही की बढ़ती हुयी प्यास को आसूदगी (तृप्ति) अता की जायगी । यहां तक कि तुम सबसे बड़ी हक़ीक़त और अपने परवर दिगार को अपनी निगाहों से देखोगे !

وُجُوْهٌ يَّوْمَئِذٍ نَّاضِرَةٌ اِلٰى رَبِّهَا نَاظِرَةٌ ط (سورۃ القیامہ)

''कितने मुंह उस दिन ताज़ा हैं अपने रब की तरफ देखने वाले'' और अगर होश में न आये, ''ज़मीनी ख्वाहिशो में ही उलझे रहे और औंधे मुंह पड़कर नीचे की तरफ निगाहों को जमाये रखा और यहां की झूठी खुशियों और आनन्द की तलाश में दौड़ता फिरे तो यह ज़िन्दगी की तमन्नाओं और इच्छाओं के गहरे समुद्र में हाथ–पांव मारने में ही व्यतीत हो जायगी, जहां "ظُلُمَاتٌ بَعْضُهَا فَوْقَ بَعْضٍ" के सिवाये कुछ नहीं اَوْ كَظُلُمٰتٍ فِىْ بَحْرٍ لُّجِّىٍّ يَّغْشٰهُ مَوْجٌ مِّنْ فَوْقِهٖ مَوْجٌ مِّنْ فَوْقِهٖ سَحَابٌ ظُلُمَاتٌ بَعْضُهَا فَوْقَ بَعْضٍ ط (سورۃ النور)

''या जैसे अन्धेरे गहरे दरिया में चढ़े आते हैं'' इस पर एक लहर, उस पर एक और लहर और इस पर अन्धेरे हैं एक पर एक ।

फिर मरोगे उस प्यासे हिरन की मौत जो चमकती हुई रेत को पानी समझकर यकायक दौड़ पड़ता है यहां तक कि हताश और निराश होकर जान दे देता है।

وَالَّذِيْنَ كَفَرُوْٓا اَعْمَالُهُمْ كَسَرَابٍۢ بِقِيْعَةٍ يَّحْسَبُهُ الظَّمْاٰنُ مَاۤءً حَتّٰٓى اِذَا جَآءَهٗ لَمْ يَجِدْهُ شَيْـًٔا وَّوَجَدَ اللّٰهَ عِنْدَهٗ فَوَفّٰىهُ حِسَابَهٗ ۔ (سورۃالنور)

''और जो लोग मुन्किर हैं उनके काम जैसे रेत जंगल में, प्यासा जाने उसको पानी यहां तक कि जब पहुंचा उस पर उसको कुछ ना पाया और अल्लाह को पाया अपने पास तो उसने पूरा चुका दिया उसका हिसाब''

और वहां उठोगे इस हाल में कि जहां पर رَبِّ لِمَ حَشَرْتَنِيْٓ اَعْمٰى ऐ ''रब क्यों उठाया तूने मुझे अन्धा'' का शिकवा होगा । और फिर रहोगे हमेशा-हमेश इस हाल में कि न ज़िन्दा लोगों में होंगे न मुर्दों में - ثُمَّ لَا يَمُوْتُ فِيْهَا وَلَا يَحْيٰى ''फिर न मरेगा उसमें न जियेगा'' न अज़ाब (यातना) की कठोरता जीने देगी और न मौत ही आयेगी कि उससे छुटकारा दिला दे لَا يَذُوْقُوْنَ فِيْهَا الْمَوْتَ मानो दुनिया और आख़िरत में तज़ाद (प्रतिकूलता) नहीं समानता है । ग़लत समझा जिन्होंने उन्हें एक दूसरे से अलग समझा । ये दोनों आपस में एक दूसरे से सम्बद्ध हैं, एक ही

इन्सानी ज़िन्दगी का सिलसिला इनमें जारी है। जिसने यहां देखा वही वहां भी देखेगा, जो यहां ''अन्धा'' रहा वह वहां ''अन्धा'' ही नहीं बल्कि "اَضَلُّ سَبِيلًا" होगा।

وَمَنْ كَانَ فِيْ هٰذِهٖ اَعْمٰى فَهُوَفِي الْاٰخِرَةِ اَعْمٰى وَاَضَلُّ سَبِيْلًا۔(سورۃ بنی اسرائیل)

और जो कोई रहा इस दुनिया में अन्धा सो तो वह अगली दुनिया में भी अन्धा होगा और बहुत दूर पड़ा हुआ राह से, वह हक़ीक़तों से जैसे इस दुनिया में आखें चुरायी वैसे ही आख़िरत की ज़िन्दगी में महान हक़ीकतों से वंचित रहेगा।

كَلَّا اِنَّهُمْ عَنْ رَّبِّهِمْ يَوْمَئِذٍ لَّمَحْجُوْبُوْنَ (سورة المطففين)

''कोई नहीं ! वह उस दिन अपने पालनहार से रोक दिये जायेंगे''

आपने देखा, इस ज़िन्दगी की हक़ीक़त ! और उस ''इक ज़रा होश में आने'' की अहमीयत तभी तो अल्लाह तआला बार-बार इर्शाद फ़रमाता है "لَوْ كَانُوْا يَعْلَمُوْنَ" (काश तुम जानते)

क़ुरआन हकीम बार-बार पूछता है -

هَلْ يَسْتَوِى الْاَعْمٰى وَالْبَصِيْرُ(سورة الانعام)

''कब बराबर हो सकते हैं अन्धा और देखने वाला''

هَلْ يَسْتَوِى الَّذِيْنَ يَعْلَمُوْنَ وَالَّذِيْنَ لَايَعْلَمُوْنَ (سورة الذمر)

''कब बराबर होते हैं समझ वाले, और ना समझ''

हक़ीक़त यह है कि अस्ल फ़र्क इल्म और जेह्ल

(ईमान एवं अज्ञानता) ही का तो है। बिल्कुल सही कहा था जिसने कहा था ''इल्म नेकी है और जिहालत बुराई'' इन्सानों के इस विशाल जन समूह पर निगाह डालो जो ज़मीन में बस रहा है और आखें खोल कर देखो । ये सारी जिहालत ही की तो चादर फ़ैली हुई है ! कौन से तअज्जुब की बात है अगर पैदा होने से लेकर मौत तक के वक्फ़े (अन्तराल) ही को ''ज़िन्दगी'' समझने वाले इन्साननुमा जानवरों की यह भीड़ छोटी-छोटी चीजों पर लड़े और कट मरे, एक दूसरे पर झपटे और गुर्राये। बिल्कुल ठीक देखा था उस हक़ीक़त देखने वाली आँख ने जिसने इन्सानों की बस्ती में बजाये इन्सानों के कुत्तों, भेड़ों और सुअरों को चलते-फिरते देखा था । (मौलाना अहमद अली लाहौरी रह० का मशहूर वाक़िया है कि जवानी के दौर में एक रोज़ कश्मीरी बाज़ार में घूम रहे थे कि एक बुजुर्ग ने उनसे कहा कि ''मैं किसी इन्सान से मिलना चाहता हूँ। क्या तुम पता बता सकते हो ? मौलाना फ़रमाते हैं कि इस पर मैंने कहा कि'' क्या तुम्हें इस भरे बाज़ार में कोई इन्सान नज़र नहीं आता ? जवाब में उस बुजुर्ग ने चारों तरफ़ निगाह घुमा कर कहा'' कहां हैं इन्सान ? मौलाना फ़रमाते हैं कि इस पर फ़ौरन मेरी कैफीयत यह हो गयी कि बाज़ार मे चारों तरफ इन्सानों

के बजाये कुत्ते और भेड़िये, बन्दर और सुअर नज़र आने लगे। यह कैफ़ीयत बस थोड़ी ही देर काइम रही । इसके बाद फिर बाज़ार इन्सानों से भरा नज़र आने लगा और वह बुजुर्ग भी नज़रों से ग़ायब हो गया)اِنۡ هِیَ اِلَّا حَیَاتُنَاالدُّنۡیَا के जिहालत की कोख से लालच, बुग्ज़ और हसद, नफरत और दुश्मनी के सिवा और क्या जन्म पा सकता है? यह झूठी खुशी और आसूदगी की तलाश में प्रयत्नशील, तुच्छ इच्छाओं और तमन्नाओं के फ़न्दों में गिरफ़्तार और झूठी आशाओं के द्वार पर दम तोड़ते हुये इन्सान, इसी तसव्वुरे ज़िन्दगी का शाहकार (महान रचना) तो है। ज़रा सोचो इस जिहालत ने ''अहसने तक़्वीम (सबसे अच्छी खसलत) में पैदा हुये इन्सान को किस तरह ''असफ़लस्साफ़िलीन (सबसे बुरी खसलत) बनाकर रख दिया है।

لَقَدۡ خَلَقۡنَاالۡاِنۡسَانَ فِیۡ اَحۡسَنِ تَقۡوِیۡمٍ ثُمَّ رَدَدۡنَاهُ اَسۡفَلَ سَافِلِیۡن(سورة التّین)

''हमने बनाया आदमी को बेहतरीन अन्दाज़े पर फिर फेंक दिया उसको नीचों से नीचे''

यह कितनी मामूली सी मामूली और हक़ीर चीज़ों को पाकर खुश ही नहीं हो पाता, बल्कि इतराने लगता है और अकड़कर चलना शुरू कर देता है और कितनी छोटी-छोटी तकलीफों और नाकामियों पर मायूस और ना उम्मीद की तस्वीर बनकर रह जाता है –

وَاِذَآاَنْعَمْنَا عَلَى الْاِنْسَانِ اَعْرَضَ وَنَابِجَانِبِهٖ وَاِذَامَسَّهُ الشَّرُّ كَانَ يَئُوْسًا(سورة بنى اسرائيل)

''और जब हम आराम भेजें इन्सान पर तो टाल जाये और बचाये पहलू और जब पहुँचे उसको बुराई तो रह जाये मायूस होकर''

''जिहालत के यह सारे कारनामें तुम्हारी निगाहों के सामने हैं और उनका नज़ारा तुम अपने सर की आँखों से कर सकते हो।'' लेकिन इल्म के पैकर को देखने के लिये तुम्हें अपनी कल्पना की आँखों को खोलना होगा । ज़रा अन्दाज़ा तो करो उस ज़ेह्न की वुस्अत और व्यापकता का जो दुनिया की ज़िन्दगी को बस एक सफ़र का दर्जा दे, जिसकी मन्ज़िल मौत की सीमा से आगे और बहुत आगे हो ...

''परे है चर्खे नीली फ़ाम से मंज़िल मुसलमां की''

"كُنْ فِى الدُّنْيَا كَاَنَّكَ غَرِيْبٌ اَوْعَابِرُ سَبِيْلٍ" (''रहो दुनिया में ऐसे कि जैसे तुम अजनबी हो या राहगीर'') जो यहां की झूठी खुशियों और मज़ों पर "مَالِىْ وَلِلدُّنْيَا" (मुझे दुनिया से क्या सरोकार ! दुनिया में मेरा हाल तो उस मुसाफिर से ज़्यादा नहीं है जो एक दरख्त के साये में थोड़ी देर आराम कर ले फिर उसे छोड़ कर चल दे) कि निगाहे ग़लत डालता हुआ आख़िरत की ज़िन्दगी की उन सच्ची और हक़ीक़ी नेमतों पर निगाह जमाये बढ़ा चला जाये''

"مالا عینٌ رآت ولا اُذنٌ سمعت وما خطر علیٰ قلب بشر"

(''जिनको न किसी आँख ने देखा, न किसी कान ने सुना और न उनकी समझ किसी इन्सान को हासिल हो'') यही तो हैं हक़ीक़त से परिचित ज़िन्दा दिल और अक़्ल व ज़ेहन रखने वाले लोग, ज़िन्दगी की रूह से वाकिफ़ और हक़ीक़त के परस्तार (उपासक), ये जीते हैं तो ''हक़'' का निशान बन कर और मरते हैं तो हक़ीक़त की निशानदेही करते हुये बक़ौल जिग़र मुरादाबादी –

''जो हक़ की ख़ातिर जीते हैं मरने से नहीं डरते हैं ज़िगर
जब वक़्ते शहादत आता है दिल सीनों में रक्सां होते हैं''

दुनिया में उन्हें "احدی الحسنیین" (कह दो क्या उम्मीद करोगे हमारे हक़ में मगर दो खूबियों में से एक की) के सिवा कुछ नज़र नहीं आता और मौत उनके लिये हयाते जावेद (अनन्त जीवन) का पैग़ाम लेकर आती है "بَلْ اَحْیَآءٌ عِنْدَ رَبِّھِمْ یُرْزَقُوْنَ" ''बल्कि वह ज़िन्दा हैं अपने रब के पास खाते-पीते'' ।

यह है करिश्मा उस हक़ीक़त के इल्म का कि इन्सानी ज़िन्दगी अबदी और स्थाई है। पेड़ों को फलों से पहचानने वालो ! कोई अन्दाज़ा कर सकते हो उस जीवन-वृक्ष की महानता का जिसका तसव्वुर ज़ेहन की उस वुस्अत और व्यापकता निगाह की उस बुलन्दी, और किरदार की उस पुख्तगी की कि बर्गोबार लाता है

"اَصۡلُهَا ثَابِتٌ وَّفَرۡعُهَا فِی السَّمَاءِ" ''उसकी जड़ मज़बूत है और शाखें आसमान में फैली हुई हैं''

और अभी यह तो एक ही रुख है ''अज़मते हयात'' की तस्वीर का दूसरा रुख अभी बाकी है। अबदियत (स्थायित्व) के रुख के जानने वाले चाहे कम हों, उसके मानने वाले बहुत हैं। लेकिन तस्वीर के उस दूसरे रुख को तो शायद ही किसी ने देखा हो ।

क़ुरआन ने जहां मौत के बाद की ज़िन्दगी की हक़ीक़तों को उजागर किया है, वहां पैदा होने से पहले की ज़िन्दगी की हक़ीक़त को भी ज़रा भी अंधेरे में नहीं रखा। अगर्चे हक़ीक़त यह है कि इसका इज़हार ''बतरे ख़फी'' किया है। लेकिन इसका सबब बिल्कुल माक़ूल और बिला किसी शको शुब्ह के मालूम हो जाने वाला है। किताबे इलाही 'लोगों के लिये मार्गदर्शन और उसने इन्सानों के विभिन्न वर्गो और समुदायों की ज़रूरतों को गहरी हिकमत के साथ पेशेनज़र रखा है'' मरने के बाद की ज़िन्दगी का इल्म इन्सानों की एक बड़ी तादाद की ''दुनयवी ज़िन्दगी'' की अमली इस्लाह के लिये बहुत ज़रूरी था। लिहाज़ा उसकी हक़ीक़तें बहुत ही स्पष्ट रूप में रोज़े रोशन की तरह किताब के हर पन्ने पर अंकित कर दी गयी हैं। जबकि पैदा होने से पहले की ज़िन्दगी का

इल्म सिर्फ इल्म की गहरी प्यास रखने वाले ज़ेह्नों के इत्मीनान के लिये ज़रूरी है और स्पष्ट है कि ''ज़ेह्ने रसा'' (बात की, तह को पहुंचने वाला ज़ेह्न) के लिये छुपी हुई हक़ीक़त का इल्म क्या मुश्किल है ।

यही वजह है कि ज़िन्दगी की तस्वीर के इस रुख़ की बस कोई झलक ही कहीं-कहीं दिखा दी गयी है! किताबे इलाही ने दुनयवी ज़िन्दगी से पहले की हमारी कैफ़ीयत को اَمۡوَاتًا के लफ़्ज़ से स्पष्ट किया है। कितना ही अज़ीम और हिकमत से पुर कलाम है''

كَيۡفَ تَكۡفُرُوۡنَ بِاللّٰهِ وَ كُنۡتُمۡ اَمۡوَاتًا فَاَحۡيَاكُمۡ ثُمَّ يُمِيۡتُكُمۡ ثُمَّ يُحۡيِيۡكُمۡ ثُمَّ اِلَيۡهِ تُرۡجَعُوۡنَ (سورة البقره)

जिस तरह इन्कार करते हो अल्लाह का हालांकि तुम बेजान थे, फिर ज़िन्दा किया तुमको, फिर मारेगा तुम को, फिर ज़िन्दा करेगा तुम को और फिर उसी की तरफ़ लौटाये जाओगे''

اَمۡوَاتًا शब्द की व्याख्या जिस किसी ने نُطۡفًا فِی الۡاَصۡلَاب (बाप दादा की पुश्तों में नुत्फ़े के रूप में) के अल्फाज़ बढ़ा कर की उसने तो ख़ैर फिर भी कम से कम एक मुकम्मल ज़िन्दगी की हक़ीक़त की तरफ़ तो इशारा कर दिया । लेकिन हक़ीक़त यह है कि जिसने उसे ''मादूम'' (ग़ाइब) का हम मआनी (पर्याय) क़रार दिया उसने किताबे इलाही को अपने इल्म पर परखने का

दुस्साहस किया ।

ज़रा ग़ौर करो, इन्सानी ज़िन्दगी का यह दौर जिसे हम दुनयवी ज़िन्दगी कहते हैं, दो मौतों के दरम्यान आया हुआ है। एक ज़िन्दगी इससे पहले और दूसरी उसके बाद। तो है कोई बाद वाली मौत को ''अदम'' से ताबीर करें ? फिर कैसी विडम्बना है कि पहली मौत को ''अदम'' कहने वाले चाहे कम हों, समझने वाले बड़ी तादाद में हैं ! हक़ीक़त यह है कि न वह मौत ''मादूम'' होने का नाम है न यह कैफ़ीयते अदम का इज़हार, न इस पर ज़िन्दगी ख़त्म होगी न उससे उसकी शुरूआत हुई थी बल्कि जैसे बाद वाली मौत बजाये ख़ुद ज़िन्दगी ही का एक वक्फ़ा होगी। इसी तरह पहले वाली मौत भी ज़िन्दगी ही का एक दौर थी ।

और जिस तरह आने वाली मौत के बाद आख़िरत की ज़िन्दगी की शुरूआत होती है बिल्कुल उसी तरह पिछली मौत से पहले भी एक ज़िन्दगी थी जिसका सबसे बड़ा वाक़िया वह ''अहदे अलस्त'' (खुदाई का इक़रार) है जिसकी ख़बर किताबे इलाही ने दी और जिसकी याद फ़ितरते इन्सानी की गहराइयों में सुरक्षित है।

وَاِذْ اَخَذَ رَبُّكَ مِنْۢ بَنِیْۤ اٰدَمَ مِنْ ظُهُوْرِهِمْ ذُرِّیَّتَهُمْ وَاَشْهَدَهُمْ عَلٰۤی اَنْفُسِهِمْ اَلَسْتُ بِرَبِّكُمْ قَالُوْا بَلٰی شَهِدْنَا(سورۃالاعراف)

''और जब निकाला तेरे रब ने बनी आदम की पीठों से उनकी औलाद को और इक़रार कराया उनसे उनकी जानों पर । क्या मैं नहीं तुम्हारा रब ? बोले हां है, हम इक़रार करते हैं।''

तो कौन कह सकता है कि जब यह मीसाक़ (प्रतिज्ञा) लिया गया उस वक़्त अहेद करने वालों को अपने वुजूद का शुऊर न था। अगर ऐसा होता तो क्या इस अहदो-मीसाक़ (प्रतिज्ञा) की कोई हैसीयत और अहमीयत हो सकती थी जो कलामे इलाही के सिलसिलये इस्तेदलाल की एक अहम कड़ी है ! यक़ीनन वहां हर इन्सान ने अपनी हस्ती और वुजूद के शुऊर के साथ अहेद किया था। तो फिर ''ज़िन्दगी'' क्या किसी और चीज़ का नाम है ?

इस पहली ज़िन्दगी के सुबूत में क़ुरआन हक़ीम की वह आयते करीमा दलील कतई (अकाट्य प्रमाण) हैं जिसमें दोज़खियों की फरियाद इन शब्दों में नक्ल की गयी है कि - رَبَّنَآ اَمَتَّنَا اثْنَتَيْنِ وَاَحْيَيْتَنَا اثْنَتَيْنِ فَاعْتَرَفْنَا بِذُنُوْبِنَا فَهَلْ اِلٰى خُرُوْجٍ مِّنْ سَبِيْلٍ (سورۃالغافر)

''ऐ रब हमारे, तू मौत दे चुका हमको दोबारा और ज़िन्दगी दे चुका हमको दोबारा । अब हम क़ायल हुये अपने गुनाहों के। फिर अब भी है निकलने को कोई राह'' ?

ज़रा वुजूद और हस्ती के इस सिलसिले पर ग़ौर करो, जो इस आयते मुबारका से साफ़-साफ़ ज़ाहिर हो रहा है ।

नग़्मे बेताब हैं तारों से निकलने के लिये,
इक ज़रा छेड़ तो दे जख़्मये मिज़्राबे हयात

हम ज़िन्दगी के पूरे शुऊर के साथ मौजूद थे, फिर हम पर ''पहली मौत'' का अमल हुआ । और हम एक लम्बे समय के लिये ''पहली मौत'' की गोद में सो गये फिर ''पहली ज़िन्दगी'' हुई और हम दुनयवी ज़िन्दगी की ''बिसाते हवाये दिल'' पर वारिद हो गये। फिर ''दूसरी मौत होगी और हम फिर एक बार मौत की नींद सो जायेंगे और फिर दूसरी ज़िन्दगी का सूर फूंका जायेगा और हम हमेशा के लिए ज़िन्दा हो जायेंगे !

## *मौत की हक़ीक़त*

थोड़ा ठहरियेः ज़िन्दगी की अज़मत और महानता के साथ-साथ मौत की हक़ीक़त भी देख लीजिये। यह ज़िन्दगी का एक अन्तराल ही नहीं, सिलसिलये ज़िन्दगी की एक कड़ी और ज़िन्दगी ही का एक रूप है, बिल्कुल नींद की तरह अब ज़रा तिलावत करो आयते करीमा

اَللّٰهُ يَتَوَفَّى الْاَنْفُسَ حِيْنَ مَوْتِهَا وَالَّتِىْ لَمْ تَمُتْ فِىْ مَنَامِهَا (سورة الزمر)

''अल्लाह खींच लेता है जानें जब वक़्त हो उनके मरने का और जो नहीं मरे उनको खींच लेता है उनकी नींद में''

और ग़ौर से सुनो नबी सल्ल० के यह अल्फाज़

وَاللّٰهِ لَتَمُوْتُنَّ كَمَاتَنَامُوْنَ ثُمَّ لَتُبْعَثُنَّ كَمَا تَسْتَيْقِظُوْنَ(حديث)

''ख़ुदा की क़सम तुम ज़रूर मर जाओगे जैसे तुम सो जाते हो । फिर यक़ीनन उठा लिये जाओगे जैसे तुम नींद में जागते हो''

और याद करो आप सल्ल० की वह दुआ जो आप सल्ल० हर सुबह को मांगते थे :

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ الَّذِىْ اَحْيَانِىْ بَعْدَهَا اَمَاتَنِىْ وَ اِلَيْهِ النُّشُوْرُ۔(حديث)

तारीफ़ है अल्लाह की जिसने मुझे ज़िन्दगी अता फ़रमायी, उसके बाद कि मुझ पर मौत तारी फरमा दी थी। शायद हक़ीक़त की कोई झलक देख लो !

अल्लाहु अकबर ! क्या "ظُلُمَاتٌ بَعْضُهَا فَوْقَ بَعْضٍ" को घटा टोप अन्धेरा छाया है, उन ज़ेहनों पर जो मौत और ज़िन्दगी को अदम और वजूद का पर्याय समझ बैठें हैं। हक़ीक़तों के इस तरह धीरे-धीरे ज़ाहिर होने के बाद अब ज़रा महसूसात की दुनिया से "طَبَقًا عَنْ طَبَقٍ" होकर विजदान (ज्ञान) के वातावरण में कल्पना की आखों को खोलो और इन्सानी ज़िन्दगी के सिलसिले का मुशाहदा (अवलोकन) करने की कोशिश करो । अगर कर पाये तो एक अजीब सा कैफ़ (आनन्द) महसूस करोगे और एक विशेष सुकून और आनन्द का अनुभव करोगे और क्या अजब तुम्हारे मुंह से निकल जाये –

سُبْحَانِیْ مَااَعْظَمَ شَانِی!

तो यही हक़ीक़त का इल्म है ।

''लोग आसान समझते हैं मुसलमां होना''

## *इन्सान की हक़ीक़त*

मन्सूर हल्लाज का यह कहना कि ''मैं ख़ुदा हूँ एक इन्तिहा पर और डार्विन का यह ''बोलना'' कि ''बूज़ना (बन्दर) हूँ मैं'' दूसरी इन्तिहा पर -- लेकिन क्या यह मामला ऐसा ही ग़ैर अहम है कि कोई ''दोस्त'' इसे हँसते हुये यह कह कर टाल दें -कि --

''फ़िक्रे हरकस बक़दरे हिम्मत अस्त''

सवाल यह है कि हक़ीक़त यह है या वह -- और अगर उन दोनों के दरम्यान है तो कहां ? और अगर यह दोनों बातें सही हैं तो कैसे ?

अयाज़ क़द्रे ख़ुद बशनास ! को न मालूम एक अपमानपूर्ण चेतावनी के अर्थ में ले लिया गया है । क्या यह मुम्किन नहीं कि बहैसियते इन्सान अपने असली मर्तबा व मुक़ाम को पहचानने की दोस्ताना नसीहत हो ? यानी बक़ौल इक़बाल ''अपनी ख़ुदी पहचान ओ ग़ाफ़िल इन्सान'' (इक़बाल का मिसरा है अपनी खुदी पहचान ओ गाफ़िल अफ़गान'') या बक़ौल बेदिल ''ऐ बहारे नेस्ती अज़ क़द्रे ख़ुद होशयार बाश'' -- इसलिये कि या तो

यह माना जाये कि महमूद और अयाज़ की रिवायती मुहब्बत बस एक क़िस्सा ही है – या फिर इस दूसरे इम्कान ही को मानना होगा।

न दरबाज़ी बऊ बावुदिल दाद महमूद
दिल महमूद राबाज़ी मपिन्दार !

सब जानते है कि ख़ुदा को ना मानना सारी बुराइयों की जड़ और सारे गुनाहों और जुर्म की बुनियाद है, लेकिन बहुत कम हैं जो यह जानते हैं, कि इस सबसे बड़े गुनाह की नकद सज़ा जो इस दुनिया ही में इन्सान को मिलती है क्या है ? ख़ुद फ़रामोशी ! क़ुरआन के मुताबिक़– وَلَا تَكُونُوا كَالَّذِينَ

نَسُوا اللَّهَ فَأَنسَاهُمْ أَنفُسَهُمْ أُولَٰئِكَ هُمُ الْفَاسِقُونَ۔ (سورۃ الحشر:۱۹)

और उन लोगों की तरह न हो जाना जिन्होंने अल्लाह कोभुला दिया तो अल्लाह ने उन्हें अपने आप से ग़ाफ़िल कर दिया यही लोग फ़ासिक (नाफ़रमान) हैं।

हिंदसा (संख्या) में हर दावा (Theorem) का एक अक्स (Converse) होता है चुनांचे इस दावे हक़ का अक्स भी किसी अक्कासे हक़ीक़त की ज़बानी यूं अदा हुआ कि –

مَنْ عَرَفَ نَفْسَه، فَقَدْ عَرَفَ رَبَّه۔

''जिसने अपने आपको पहचान लिया उसने अपने रब को पहचान लिया। तो क्या अपने आपको पहचानना और रब को पहचानना दोनों लाज़िम व मलज़ूम हैं और इन्सान की हक़ीक़त और रब की ज़ात में इतना गहरा और करीबी

सम्बंध है ?

इन मसलों के हल करने के सिलसिले में अगर इन्सान सिर्फ़ हवासे ज़ाहिरी (वाह्य इन्द्रियों) के द्वारा प्राप्त जानकारी को ही अस्ल हक़ीक़त समझ ले तो जवाब इसके सिवा और क्या हो सकता है कि इन्सान भी बस एक हैवान है, दूसरे हैवानों की अपेक्षा कुछ सभ्य और तरक़्क़ीयाफ़्ता हैवान है। हां विजदान की वादियों (घाटियों) में पर्वाज़ की जाये जैसे बड़े-बड़े शायरों ने की तो हक़ीक़त कुछ और ही नज़र आती है - और मसले का पूरा इत्मीनान बख्श हल तो कलामे इलाही की मदद के बग़ैर मुम्किन ही नहीं ।

एक बड़े बुज़ुर्ग के सामने यह शिकायत की गयी ''हज़रत अब तो अनानीयत (अहंवाद) का ज़माना है और हर शख्श इस भयानक बीमारी में गिरफ़्तार हो चुका है'' --- इस पर उन्होंने फ़रमाया ''भाई ! हक़ीक़त तो यह है कि ''अनानीयत'' का दौर भी गुज़र चुका, अब तो निरी नानीयत (नान यानी रोटी) ही नानीयत रह गयी है।

इसमें बिल्कुल संदेह नहीं है कि मौजूदा दौर की सबसे बड़ी विडम्बना यही है कि आज का इन्सान अपने आपको मात्र एक हैवान तसव्वुर करता है। इन्सानों की बहुत बड़ी तादाद तो अपनी अज़मत से पूरी तरह बेख़बर और अपनी हक़ीक़त से बिल्कुल अपरचित है। वह मात्र अपनी भौतिक आवश्यकताओं और तकाज़ों की सन्तुष्टि

और पूर्ति के लिये दौड़-धूप कर रहा है ------- अक़्ल व इल्म रखने वाले लोगों की अच्छी खासी तादाद भी काइनात को अस्ल माद्दी (Material) मान कर ---- और माद्दा (Matter) को वास्तविक मानकर वाक़ियत पसन्दी (Realism) की तरफ़ रुख किये हुये है। --- यहां तक कि जिन्हें इस सतह से थोड़ा ऊपर उठाने का मौक़ा मिला है'' वह भी ज़ेह्न (Mind) और रूह (Soul) की ''अईनीयत'' (असलीयत) की बहसों में उलझकर रह गये हैं।

और आज का इन्सान जिस ज़ेह्नी व फिक्री उल्झनों और अख़लाक़ी और अमली पस्ती का शिकार हो चुका है उससे नजात की वाहिद राह अपनी अज़मत का इल्म और अपने मुक़ाम व मर्तबा का दुबारा ठीक-ठीक परिचय के सिवा कुछ नहीं ----- मानो कि इलाज उसका वही ''आबे निशात अंगेज़ है साक़ी'' यानी बक़ौल डा० इक़बाल अपनी ख़ुदी पहचान ओ ग़ाफिल इन्सान'' और बेदिल के मुताबिक ''ऐ बहारे नेस्ती अज़कद्रे ख़ुद हुश्यार बाश''

हक़ीक़त यह है कि इन्सान एक मुरक्कब (compound) वजूद रखता है - बक़ौल शेख़ सादी रह०

''आदमी ज़ादह तुरफ़ा-ए-माजूनी अस्त
अज फ़रिश्ता सरिश्तह व अज़ हैवान

इसका एक भाग ''अहसनि तकवीम'' का मुकम्मल मज़हर है तो दूसरा ''अस्फ़लस्साफ़िलीन'' का कामिल नमूना। एक का संबंध ''आलमे अम्र'' से है तो दूसरे का

आलमे खल्क़'' से اَلَا لَهُ الْخَلْقُ وَالْاَمْر (سورۃ الاعراف:۵۴) एक मिट्टी से तो दूसरा नूर से, बक़ौल इक़बाल –

ख़ाकी व नूरी निहाद, बन्दये मौला सिफ़ात
हर दो जहां से ग़नी उसका दिल बे नियाज़

एक हर वक़्त पस्ती और पतन की ओर रवां तो दूसरा पवित्र वजूद है और हमेशा बुलन्दी पर नज़र रखने वाला है, बक़ौल शायर –

''क़ुदसिउल अस्ल है रिफ़अत पर नज़र रखता है''

एक हैवानों की सफ़ में है -- और उनमें से भी बहुतों के मुक़ाबले में मुख्तलिफ नज़रियों से कमतर और कमज़ोर तो दूसरा फरिश्तों के बराबर है बल्कि मुक़ाम व मर्तबा में उनसे भी कहीं ज़्यादा अफज़ल और श्रेष्ठ यहां तक कि उसको फ़रिश्तों ने सजदा किया। एक इबारत है उसके हैवानी वजूद से तो दूसरा मज़हर है उस रूहे रब्बानी, का जो उसमें फूंकी गयी, और जिसकी बुनियाद पर फरिश्तों ने सजदा किया । क़ुरआन के मुताबिक ---

فَاِذَا سَوَّيْتُهٗ وَنَفَخْتُ فِيْهِ مِنْ رُّوْحِى فَقَعُوْا لَهٗ سٰجِدِيْنَ (سورۃ الحجر:۲۹،ص:۷۲)

''और जब मैं इसे पूरी तरह बना लूं और उसमें अपनी रूह में से फूंक दूँ तब गिर पड़ा उसके सामने सजदे में'' ।

अब अक़्ल व समझ रखने वालों में से जिनकी नज़र अपने वुजूद के बुलन्द हिस्से पर केन्द्रित होकर रह रही है और वह उसकी अज़मत व बुलन्दी के मुशाहदे में खोकर

रह गये उनमें से कोई हैरान होकर पुकार उठा ''सुब्हानी मा आज़मुश्शानी'' किसी ने जज़्ब व मस्ती की हालत में नारा लगा दिया ''अनल हक़'' और कैफ व मस्ती में डूब कर पुकार उठा– ''लैसा हुआ फी जुब्बती इलल्लाह'' जिनकी निगाहे तहक़ीक़ इन्सान के वुजूदे हैवानी ही पर केन्द्रित रही और वह उसी के बारे में बहसो–मुबाहसा और उसी से सम्बन्धित ग़ौरोफ़िक्र में गुम होकर रह गये। उन्हें उसका सम्बंध लामुहाला बन्दरों, बनमानुसों और गौरिल्लों ही से जोड़ते बनी ।

मानो कि इन्सान की हक़ीक़त के सिलसिले में उपर्युक्त और एक दूसरे के विपरीत बातें आंशिक रूप से अपनी–अपनी जगह सही भी हैं और पूर्ण रूप से ग़लत भी। और उक्त मसले का कोई हल इसके बग़ैर मुम्किन नहीं कि इन्सान को एक दूसरे के विपरीत चीज़ों का बना हुआ तसलीम किया जाये ।

स्पष्ट रहे कि इन्सानी वुजूद के ये दोनों हिस्से एक दूसरे से बिल्कुल आज़ाद और अपनी–अपनी जगह मुकम्मल और हर लिहाज़ से ख़ुद मुकतफ़ी (Self-Sufficient) होने के बावजूद हद दर्ज़ा एक दूसरे से मिले ही नहीं बल्कि आपस में पिरोये हुये हैं। इन्सानी अक़्ल के सबसे बड़े मुग़ालतों (भ्रम) में से एक यह भी है कि ''रूहे इन्सानी'' को ''जान'' के अर्थ में ले लिया गया है ।

हांलाकि ''जान'' या ज़िन्दगी या लाइफ़ तो इन्सान के वजूदे इन्सानी का नाक़ाबिले तक़सीम हिस्सा है-- और रूहे इन्सानी अपना एक अलग वुजूद रखते हुये उस वजूदे हैवानी के साथ ''इत्तेसाले बेतकयीफ़ बे क़यास'' के रिश्ते में बंधा हुआ है- रूह के वजूदे हैवानी के साथ इस मिलान के सिलसिले में ''कहां'' और ''कैसे'' के सवाल उसी तरह हल होने वाले नहीं हैं जैसे ख़ुद यह सवाल कि जान और जिस्म का सम्बंध किस तरह का है और किस हिस्से से सम्बंधित है। अगर्चे बहुत खूब कहा है किसी कहने वाले ने कि -

जा निहां दर जिस्मउ दूर जां निहां- ऐ निहां अन्दर निहां ऐ जाने जां

इसके अतिरिक्त-इन्सान के यह दोनों वजूद पूरी तरह स्पष्ट हैं। इसकी ऑखें सिर्फ़ ज़ाहिरी या हैवानी देखना देखती हैं और कान सिर्फ़ ज़ाहिरी या हैवानी सुनना सुनते हैं और यह दोनों ज़ाहिरी हवास (बाह्य इन्द्रियां) अपनी प्राप्त जानकारी को अक़्ले हैवानी यानी (दिमाग़) के हवाले कर देते हैं जो उनसे नतीजे निकालता है।

जबकि इन्सानी रूह भी न सिर्फ़ देखती है और सुनती है और उसका यह देखना और सुनना ज़ाहिरी आंखों और कानों से बिल्कुल आज़ाद है बल्कि ग़ैराफ़िक्र भी करती है जिनका कोई सम्बंध अक़्ले हैवानी या दिमाग़ से नहीं है -- रूह की बलन्द नज़र व समाअत (देखने और

सुनने की शक्ति) और ग़ौरोफ़िक्र का नाम क़ुरआन की इस्तिलाह में ''क़ल्ब'' यानी दिल है आयते क़ुरआनी के मुताबिक –

لَهُمْ قُلُوبٌ لَّا يُفْقَهُوْنَ بِهَا وَلَهُمْ اَعْيُنٌ لَّا يُبْصِرُوْنَ بِهَا وَ لَهُمْ اٰذَانٌ لَّا يَسْمَعُوْنَ بِهَا اُولٰئِكَ كَالْاَنْعَامِ بَلْ هُمْ اَضَلُّ۔

(سورۃ الاعراف:۱۷۹)

''उनके दिल हैं लेकिन उनसे सोचते नहीं, और आंखें है पर उनसे देखते नहीं, और उनके कान हैं मगर उनसे सुनते नहीं । ये जानवरों की तरह हैं बल्कि उनसे भी बदतर''।

اَفَلَمْ يَسِيْرُوْا فِى الْاَرْضِ فَتَكُوْنَ لَهُمْ قُلُوبٌ يَّعْقِلُوْنَ بِهَا اَوْاٰذَانٌ يَّسْمَعُوْنَ بِهَا ۚ فَاِنَّهَا لَا تَعْمَى الْاَبْصَارُ وَلٰكِنْ تَعْمَى الْقُلُوْبُ الَّتِىْ فِى الصُّدُوْرِ۔ (سورۃ الحج:۴۶)

''तो क्या उन्होंने ज़मीन में सफ़र नहीं किया। फिर अगर उनके दिल जागते होते तो उनसे सोच-विचार करते या उनके कान होते जिनसे सुनते, इसलिये कि अस्ल में आंखें अंधी नहीं होती बल्कि वह दिल अन्धे हो जाते हैं जो सीनों में होते हैं'' .....

यही नहीं ---- बल्कि क़ुरआन व हदीस के इशारों से तो मालूम होता है कि क़ल्ब यानी दिल इन्सानी रूह के लिये सिर्फ़ देखने व सुनने और सोचने और समझने का सिर्फ साधन ही नहीं, बल्कि उसका मस्का (ठिकाना) भी है और उसकी मिसाल क़िन्दील (दीपक) के उस शीशे की सी है जिसके अन्दर कोई चिराग़ रोशन हो। चुनांचे अगर रूहेइन्सानी को उस चिराग़ से तशबीह दी जाये जिसमें ख़ुदा

का नूर प्रदर्शित है तो साफ–सुथरे दिल की मिसाल उस स्वच्छ एवं साफ शीशे की है जो रूह के नूर (ज्योति) से इस तरह जगमगा उठता है कि इन्सान का पूरा जिस्मानी वजूदे हैवानी (शारीरिक अस्तित्व) अल्लाह के नूर से प्रकाशमान हो जाता है – चुनांचे यही मतलब है उस अहम मिसाल का जो सूरह नूर में आया है । اَللّٰهُ نُوْرُ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِؕ مَثَلُ نُوْرِهٖ كَمِشْكٰوةٍ

فِيْهَا مِصْبَاحٌؕ اَلْمِصْبَاحُ فِىْ زُجَاجَةٍؕ اَلزُّجَاجَةُ كَاَنَّهَا كَوْكَبٌ دُرِّىٌّ۔ (سورۃالنور۳۵)

‘‘अल्लाह ही आस्मानों और ज़मीन का नूर है । उसके नूर की मिसाल (मोमिन के दिल में) यूं है जैसे एक ताक़ हो जिसके एक चिराग़ हो, वह चिराग़ एक शीशे में हो और वह शीशा ऐसे हो जैसे एक चमकता हुआ सितारा’’

इस आयत के सिलसिले में बिल्कुल सही है वह राय जो अक्सर हमारे बुज़ुर्गों ने दी है कि ‘‘मसलूनूरिही’’ के बाद ‘‘फीक़ल्बे मोमिन’’ के अल्फाज़ महज़ूफ़ (लुप्त) हैं। इसके विपरीत अगर शीशये क़ल्ब गुनाहों, नाफ़रमानियों अपनी इच्छाओं की उपासना और वासनाओं में लिप्त होने के कारण दाग़दार और गन्दा हो जाता है तो रूहे अनवार (प्रकाशपुंज) के इन्सान के जिस्मानी वजूद में सरायत करने में रुकावट पैदा हो जाती है और इस कैफीयत में इज़ाफ़ा होता चला जाता है। इस तरह जिसकी वज़ाहत इस हदीस नबवी सल्ल० में मिलती है :

ان المؤمن اذا اذنب كانت نكتة سوداء فى قلبهٖ فان تاب واستغفر صُقل قلبه‘ وان زاد، زادت حتى تعلو قلبه‘ فذالكم الرّان الّذى ذكر اللّٰه تعالىٰ ”كَلّا بل ران علىٰ قلو بهم مّا كانُوا يكسبون“۔ (سورۃ المطففين:١۴)

''मोमिन जब कोई गुनाह करता है तो उसके दिल पर एक काला धब्बा पड़ जाता है। फिर अगर तौबा व इस्तेग़फार करता है तो दिल साफ हो जाता है और अगर और गुनाह करता है तो दिल का कालापन और बढ़ता चला जाता है, यहां तक कि पूरे दिल पर छा जाता है, चुनांचे यही है वह दिलों का जंग (मुर्चा) जिसका ज़िक्र अल्लाह ने इस आयत में फ़रमाया है ''नहीं बल्कि जंग लग गया है उनके दिलों पर उनके आमाल के सबब'' और इस अमल की यही वह मंतकी हद (तर्कपूर्ण सीमा) है जिसे क़ुरआन में ''दिलों पर मुहर'' लगा देने से ताबीर फ़रमाया गया -- क़ुरआन के अल्फाज़ में خَتَمَ اللّٰهُ عَلٰى قُلُوْبِهِمْ وَ عَلٰى سَمْعِهِمْ وَعَلٰى اَبْصَارِهِمْ غِشَاوَةٌ وَّلَهُمْ عَذَابٌ عَظِيْمٌ۔ (سورۃالبقرہ:۷) ''अल्लाह ने मुहर लगा दी है उनके दिलों पर और उनके कानों पर और उनकी आंखों पर पर्दा है – और उनके लिये बहुत बड़ी सज़ा है'' اُولٰٓئِكَ الَّذِيْنَ طَبَعَ اللّٰهُ عَلٰى قُلُوْبِهِمْ وَسَمْعِهِمْ وَاَبْصَارِهِمْ ۚ وَ اُولٰٓئِكَ هُمُ الْغٰفِلُوْنَ۔ (سورۃالنّحل: ۱۰۸)

''यही हैं वह लोग जिनके दिलों, कानों और आंखों पर अल्लाह ने मुहर लगा दी है और वही है ग़ाफिल और बेख़र'' यही वह कैफीयत है जिसे क़ुरआन इन्सान की ''रूहानी मौत'' से ताबीर करता है, इसलिये कि इस हाल में इन्सान के जिस्मानी वजूद का उस रूहे रब्बानी से सम्बंध बिल्कुल टूट जाता है जिसने उसे श्रेष्ठता प्रदान की। और उसका निहा खानाये क़ल्ब (हृदयरूपी घर) रूह की कब्र की सूरत इख़्तियार कर लेता है। नतीज़ा के तौर पर इन्सान के रूप में दो टांगों पर चलने वाला मात्र हैवान रह जाता है जो इन्सान की हक़ीक़त के एतिबार से एक चलते-फिरते

मक़बरे और ताज़िये के सिवा कुछ नहीं होता,
اُولٰئِكَ كَالْاَنْعَامِ بَلْ هُمْ اَضَلُّ !! चुनांचे ऐसे ही, हक़ीक़त के एतिबार से मुर्दा और ज़ाहिरी एतिबार से ज़िन्दा इन्सानों का ज़िक्र है इन आयतों में – اِنَّكَ لَا تُسْمِعُ الْمَوْتٰى۔ (سورۃ النمل:۸۰) ''ऐ नबी सल्ल० आप सल्ल० नहीं सुना सकते इन मुर्दो को'' فَاِنَّكَ لَا تُسْمِعُ الْمَوْتٰى وَلَا تُسْمِعُ الصُّمَّ الدُّعَاءِ۔ (سورۃ الرّوم:۵۲) ''तो ऐ नबी सल्ल० आप न उन मुर्दो को सुना सकते हैं और न इन बहरों तक अपनी दावत पहुंचा सकते हैं'' जिन्हें बाज़ लोग ख्वाह मख्वाह घसीट ले जाते हैं ''मुर्दे सुनते हैं या नहीं'' के एक इख़्तिलाफ़ी मसले पर बहस-मुबाहसे में ।

यानी जब तक कोई शख्स इन्सानी वुजूद के इन दो एक दूसरे के विपरीत हिस्से को न जान लें वह दीन व मज़हब के बारीक हक़ीक़तों और आस्मानी हिदायत में आये हुये इल्म व हिक़मत को ठीक-ठीक नहीं समझ सकेगा । और इस नावाक़फ़ियत के बावजूद अगर मुकामे दावत पर फायज़ हो जायेगा तो उसकी सारी गुफ्तगू शरीअत के एहकाम और निज़ामे इस्लाम के बारे में होगी। ईमानी हक़ीक़तों का ज़िक्र होगा भी तो बस सरसरी तौर पर और अगर क़ुरआन का मुफ़स्सिर बन बैठेगा तो ग्रैमर की कठिनाईयों, मआनी व बयान की बारीकियों और फ़साहत व बलाग़त की खूबियों से तो खूब बहस करेगा लेकिन हिक़मते दीन के बारीक व गहरे बिन्दु उसके निगाहों से ओझल रह जायेंगे और ईमान की हक़ीक़त के एतिबार से अहम मुकामों से वह ऐसे गुज़र जायेगा जैसे वहां कोई तवज्जेह देने लायक बात है ही नहीं ।

नसीहत हासिल करो ऐ अक़लमन्दों